International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232
Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 4; Issue 6; November 2018; Page No. 33-35

बौद्ध संघ में भिक्षुणिया

Dr. Jaya Srivastava
Department of Ancient Indian History, University of Lucknow, Uttar Pradesh, India

प्रस्तावना

बौद्ध धर्म पहले स्त्रियों को संघ में दीक्षित करने के पक्ष में नहीं था। विनयपिटक से ज्ञात होता है कि भगवान बुद्ध नारी के प्रव्रज्या ग्रहण करने के विरुद्ध थे।[1] महाप्रजापति गौतमी के आग्रह से वैशाली में भिक्षुणी संघ की स्थापना हुई थी। संघ–प्रवेश और सामान्य नियमों में भिक्षुणी संघ भिक्षु संघ पर औपचारिक रूप से आश्रित था।[2]

दिनचर्या

बौद्ध भिक्षुणियां प्रति पन्द्रहवें दिन उपोसथ की तिथि पूछने तथा उपदेश सुनने भिक्षु–संघ के पास जाती थीं। भिक्षुणियों के लिये भिक्षा–चर्या भी दिन का एक आवश्यक भाग था। भिक्षुणी के लिए दोपहर के बाद भोजन करना निषिद्ध था। इसलिए उसे दोपहर के पहले ही भिक्षा के लिए जाना होता था। इसके अतिरिक्त भिक्षुणियां अध्ययन–अध्यापन का कार्य करती थी।

बौद्ध भिक्षुणियां अत्यन्त अध्ययनशील होती थीं। भिक्षुणी क्षेमा का कोशल–नरेश प्रसेनजित से दार्शनिक वार्तालाप हुआ था। उसने प्रसेनजित्त के गूढ़ दार्शनिक प्रश्नों का बहुत ही विद्वतापूर्ण ढंग से उत्तर दिया था। क्षेमा को पण्डिता तथा बहुश्रुता कहा गया है।[3] भिक्षुणी धम्मदिना भी बहुत विद्वान थी, उन्होंने श्रावक विशाख के गम्भीर प्रश्नों का सहजतापूर्वक उत्तर दिया था। धम्मदिना बहुत ही ज्ञाता थी। धम्मदिना के उत्तर का समर्थन स्वयं भगवान् बुद्ध ने किया था। भगवान् बुद्ध धम्मदिना से बहुत प्रभावित हुये तथा उसे पण्डिता तथा महाप्रज्ञावान बताया था।[4]

भिक्षुणियों द्वारा अपनी निम्न प्रकृति (मार) के ऊपर विजय प्राप्ति के समय के उद्‌गार वर्णित हैं। कुछ ऐसी भिक्षुणियों का भी विवरण मिलता है जिन्हें तीनों विद्याओं में पारंगत बताया गया है।[5]

भिक्षुणी भद्रा कापिलायिनी को अपने आचार्य स्थविर महाकाश्यप के समान तीनों विद्याओं को जानने वाला बताया गया है। साथ ही उसे मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाली तथा मार और उसकी सेना को जीत कर अन्तिम देह धारण करने वाली कहा गया है।[6] पटाचारा को विनय–धारियों में अग्र कहा गया है।[7] जिनदत्ता नामक भिक्षुणी को विनयपिटक की पंडिता, बहुश्रुता तथा सदाचारिणी कहा गया है।[8]

भिक्षुणी बुद्धमित्रा को 'त्रेपिटिका' कहा गया है। अर्थात् वह तीनों पिटकों की ज्ञाता थी। उसे अपने गुरू थेरभदन्त बल के समान योग्य बताया गया है।

उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि बौद्ध भिक्षुणियां अध्ययन में गहरी रुचि रखती थीं और बौद्ध ग्रन्थों का सम्यक् अनुशीलन कर उनमें पारंगत हुआ करती थीं।

बौद्ध संघ के नियमों के अनुसार भिक्षुणियों को प्रति 15वें दिन भिक्षु संघ से उपदेश सुनने के लिए जाना पड़ता था। भिक्षु ही भिक्षुणियों को उपदेश देने का अधिकारी होता था। भिक्षुणी किसी भिक्षु को उपदेश नहीं दे सकती थी। लेकिन एक भिक्षुणी संघ की भिक्षुणियों को तथा उपासक–उपासिकाओं को उपदेश दे सकती थी।

भिक्षुणी शुक्ला द्वारा महती सभा में धर्मोपदेश करने का उल्लेख है – जैसे पथिकगण वर्षा के जल का आनन्दपूर्वक पान करते हैं, उसी प्रकार शुक्ला के मधुर तथा ओजपूर्ण धर्मोपदेश को जन–समुदाय ग्रहण करता है।[9]

भिक्षुणी पटाचारा के उपदेश को अमोघ बताया गया है।[10] पटाचारा ने अपने उपदेश से अनेक दुःखी नारियों को बौद्ध–संघ में प्रवेश के लिए उत्साहित किया था।[11] भिक्षुणी क्षेमा ने विजया को धातु, आयतन, आर्य–सत्य, इन्द्रिय, बल, बोध्यंग, आर्य–मार्ग का उपदेश दिया था।[12] भिक्षुणियां गूढ़ प्रश्नों को सरलतापूर्वक समझाने में सक्षम थीं। उन्हें यह कहा गया था कि जो भिक्षुणी विज्ञ न हो, वह कम शब्दों में ही धर्मोपदेश करे।[13]

भिक्षुणियां अध्यापन भी करती थीं। प्रवर्तिनी को ''उपाध्याया'' कहा गया है। वह श्रामणेरी को 10 शिक्षापदों तथा शिक्षमाणा को दो वर्ष तक षड्धर्मों की सम्यक्‌रुपेण शिक्षा प्रदान करती थी तथा उनका पालन करवाती थी। प्रवर्तिनी द्वारा प्रतिवर्ष दो या एक शिक्षमाणा बनाना निषिद्ध था।[14]

बौद्ध भिक्षुणियों की दिनचर्या में ध्यान तथा समाधि का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान था। ध्यान की क्रिया से चित्त का परिष्कार अथवा परिशोधन होता है, ध्यान का अर्थ है चिन्तन करना। [15] ध्यान का मुख्य उद्देश्य निर्वाण की प्राप्ति बताया गया है। समाधि शब्द का प्रयोग बौद्ध ग्रन्थों में चित्त की एकाग्रता के लिए किया है। बुद्धघोष ने समाधि को ''कुसलचित्त की एकाग्रता'' कहा है।

बौद्ध–ग्रन्थों में ध्यान की चार अवस्थाओं का उल्लेख है। प्रथम ध्यान में काम एवं अकुशल धर्मों से विविक्त होकर चित्त वितर्क–विचार से युक्त अनुभव में निमग्न रहता है। दूसरे ध्यान में वितर्क एवं विचार शान्त हो जाते हैं। चित्त अपने अन्दर समाधिजन्य प्रीति सुख का अनुभव करता है। तीसरे ध्यान में प्रीति भी छूट जाती है। इस ध्यान में ध्येता (ध्यायी) को ''सुख–विहारी'' कहा गया है। चौथे ध्यान में सुख भी छूट जाता है। इस तरह सुख और दुःख, सौमनस्य एवं दौर्मनस्य के अस्त हो जाने से स्मृति–परिशुद्धि का चतुर्थ ध्यान में लाभ होता है।

अनेक भिक्षुणियां ध्यान करती थीं। भिक्षुणी उत्तमा ने शून्यताध्यान् को प्राप्त किया था इसी प्रकार भिक्षुणी सुमंगलगाता[16] तथा भिक्षुणी शुभा[17] द्वारा वृक्ष के नीचे ध्यान करने का उल्लेख है। भिक्षुणी नन्दा को ध्यान करने वालियों में अग्र कहा गया है।[18]

ध्यान के द्वारा ही भिक्षुणियां समाधिस्थ होती थीं, जिसमें वे निर्वाह सुख का आनन्द प्राप्त करती थीं। वे ध्यान में इतनी लीन हो जाती थीं कि अपने को बुद्ध से अलग नहीं मानती थीं, अपितु उनकी औरस तथा मुख निःसृत कन्या मानने लगती थीं। वे अपने को ''ओरसा धीता बुद्धस्स''[19] कहती हैं। ध्यान के द्वारा चित्त इतना निर्मल हो जाता था कि निर्वाण प्राप्ति मे कोई अवरोध उपस्थित

नहीं हो सकता था। स्त्रीत्व भी कोई बाधा नहीं थी।[20]

ध्यान करने की विधि इस प्रकार है – भिक्षुणियां पैर धोकर एकान्त स्थान में बैठती थीं। तत्पश्चात् चित्त को एकाग्र कर समाधि में स्थित होती थीं। फिर यह प्रत्यपेक्षण करती थीं कि सभी संस्कार अनित्य हैं, दुःख रूप हैं तथा अनात्म हैं। भिक्षुणियां उद्‌गार प्रकट करती हैं कि उन्होंने रात्रि के प्रथम याम में पूर्व जन्मों का स्मरण किया, मध्यम याम में अंधकारपुंज को नष्ट कर दिया; जब वे आसन से उठीं तो तीनों विद्याओं की पूर्ण ज्ञाता थीं। [21] जब चित्त एकाग्र नहीं हो पाता था, तो वे इसके लिए कठोर प्रयत्न करती थीं। भिक्षुणी उत्तमा सप्ताह भर एक ही आसन पर बैठकर ध्यान करती रही, आठवें दिन उसका अज्ञानान्धकार नष्ट हुआ। [22] भिक्षुणी अनुपमा की वासना का सात रात तक ध्यान करने के बाद मूलोच्छेदन हुआ।[23] भिक्षुणी श्यामा को आठवीं रात को दिव्यचक्षु प्राप्त हुआ।[24]

सम्यक्‌रूपेण ध्यान करने से वे अलौकिक शक्तियों से युक्त हो जाती थीं। भिक्षुणी सकुला कहती है कि ध्यान के उत्कर्ष में उसे विशुद्ध, विमल दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई।[25] भिक्षुणी वड्ढेसी ध्यान के बाद की अवस्था का वर्णन करते हुए कहती है ''अपने अतीतजन्म मुझे ज्ञात है, तथा विशोधित हुये मेरे चक्षु दिव्य हैं। परचित्तज्ञान मुझे लब्ध है, अलक्ष्य वस्तुओं को भी मैं श्रवण कर सकती हूँ, योग विभूतियाँ भी मैंने प्राप्त की, छः अभिज्ञाओं का मैंने साक्षात्कार किया।[26] ध्यान के पश्चात् वड्ढमाता कहती है कि हीन, मध्यम और उत्तम जितने भी संस्कार हैं, उनकी अणुमात्र भी तृष्णा उसके चित्त में नहीं है।[27]

संघ के नियमों के अनुसार उन्हें अकेले जंगल में रहना या अकेले घूमना निषिद्ध था। कहीं भी जाने पर भिक्षुणियों की संख्या एक से ज्यादा रहती थी, अतः वे इतनी एकाग्रता के साथ ध्यान करने का अवसर नहीं पाती थीं, जितना कि भिक्षुओं को उपलब्ध था। फिर भी, उपर्युक्त निषेधों के बावजूद, भिक्षुणियां ध्यान के लिए एकान्त स्थल की तलाश कर लेती थीं। भिक्षुणी दन्तिका ने गृध्रकूट पर्वत के शिखर पर बैठकर ध्यान की साधना की थी तथा उस निर्जन अरण्य में ही अपने चित्त को दमित कर उस पर विजय प्राप्त की थी।[28] भिक्षुणी शैला [29] का उल्लेख प्राप्त होता है, जो एक बार अन्धवन में एकान्तवास कर रही थी। उसे अकेली पाकर मार ने लोभकारी वचनों से धर्मच्युत करने का प्रयास किया। भिक्षुणी चोला का भोजनोपरान्त अन्धवन में ही ध्यान करने के लिए जाने का उल्लेख है। फिर भी उन्हें ध्यान हेतु एकान्त स्थल सहज सुलभ नहीं थे। अतः ऐसा ज्ञात होता है कि भिक्षुणियां कमरे में ही ध्यान करती थीं।

भिक्षुणियों के लिए संघाटि, उत्तरासंघ, अन्तरवासक, अंगरखा (संकच्चिक) और लहंगा (कुशलका) धारण करने का विधान था। इसके अतिरिक्त कंचुकी और कायबन्ध पहनने की अनुमति थी।

बौद्ध धर्म प्रव्रजित भिक्षुणियों को काषाय रंग के वस्त्र जिसे चीवर कहा जाता था, को धारण करने की अनुमति थी।[30]

वर्षाकाल में ''वार्षिक साटिका'' (वस्सिक साटिका) जो छः बित्ता लम्बी तथा ढाई बित्ता चौड़ी होती थी, भिक्षुणियों के लिए विहित थी।[31]

भिक्षुणियां सौन्दर्य–प्रसाधन से दूर रहती थी जैसे– अंगराग लेप अर्थात् उबटन, शरीर मलवाना, अंजन, दर्पण, माला, विविध लेप, मुख पर चूर्ण का प्रयोग, आभूषण आदि।

भोजनोपरान्त मुख को भली–भांति स्वच्छ रखने की परम्परा थी। भिक्षुणियों के लिए नख बढ़ाना वर्जित था।

भिक्षुणियां हड्डी दाँत, सींग, नरकट, बाँस काष्ठ, लाख, फल शंख और ताँबे की बनी कर्ण–मल हरिणी का प्रयोग करते थे।[32]

मालिश का ध्यान रखना बौद्ध भिक्षुणियों के लिए वर्जित था।

स्नान के समय भिक्षुणियों के लिए सुगन्धित वस्तुओं का प्रयोग सर्वथा वर्जित था। वे केवल स्वच्छ पकति मत्तिक अथवा प्राकृत्तिक मिट्टी ही स्नान के समय प्रयोग कर सकती थीं। इस प्रकार के चूर्ण को एक कांसे के पात्र में रखकर जलकणों के छींटे देकर नर्म करके बनाया जाता था जिसे ''नहानीय पिण्ड'' कहते थे।[33]

भिक्षुणियों के लिए नग्न स्नान करना सर्वथा निषिद्ध था। उनके लिए किसी प्रकार के सुगन्धित चूर्ण अथवा तिल की खली (उबटन) का प्रयोग भी वर्जित था। भिक्षुणियों के स्नान के निमित्ति कुछ कठोर नियम थे। किसी विशेष स्थिति अथवा अवस्था को छोड़कर भिक्षुणियों को आधे मास के पूर्व स्नान करना वर्जित था। यह विशेष अवस्था, ग्रीष्म, वर्षा, गर्मी से जलन, किसी प्रकार के चर्म रोग, भूमि लीपने, पोतने, मार्ग तय करने (दूर चलने) अथवा आँधी–पानी की थी। ऐसी दशा में भिक्षुणियों को स्नान करना आवश्यक हो जाता था।[34] सम्भवतः यह नियम कुछ विशेष परिस्थिति अथवा अवस्था के भिक्षुणियों के लिए थी।

मैल साफ करने के लिए भिक्षुणियों को मार्जक उपकरणों जैसे गुथे हुए रेशम की डोरी, मल्लक से दूर रहना होता था क्योंकि उनके लिए यह समस्त उपकरण वर्जित थे।[35]

विशेष परिस्थितियों में भिक्षुणियां साधारण वस्त्र को ऐंठकर एक कोड़े का रूप देते हुए उसके द्वारा शरीर रगड़ती थीं। दाद–रोग से पीड़ित भिक्षुणी बिना गढ़े हुए मल्लकों का प्रयोग करती थी। पैरों का मैल रगड़कर दूर करने हेतु मिट्टी के पकाए हुए चपटे और छोटे उपकरणों की प्रथा प्राचीन काल की है। भिक्षुणी लोग ''फतक'' नामक उपकरण के अतिरिक्त 'कठल' तथा 'सम्रदफेन' का प्रयोग मैल छुड़ाने हेतु करती थीं।[36]

भिक्षुणियां सौन्दर्य–प्रसाधन का प्रयोग नहीं करती थीं। परन्तु वे नेत्रों को स्वस्थ रखने के लिए अंजन का प्रयोग करती थीं। वे स्वर्ण तथा रजत की बनी अंजनी के स्थान पर हड्डी, दाँत, सींग, बाँस, नरकट (नरकुल), लाख, ताँवे, लोहे तथा शंख की ढक्कनदार अंजनी में अंजन रखती थी।[37] अंजन लगाने हेतु शालाकाओं का प्रयोग किया जाता था। भिक्षुणियां हड्डी अथवा शंख की बनी शालाकाओं का ही प्रयोग करती थीं।[38]

भिक्षुणी वर्ग को मुण्डित केश होने के कारण ''कोच्छ'' तथा ''फण'' के प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती थी और न ही वे खली या मोम अथवा 'जल मिश्रित तेल' का ही प्रयोग करती थीं जो उनके लिए निषिद्ध था।

भिक्षुणियां केशों को रंगती तथा उन्हें उखाड़ती थी। वे दर्पण का प्रयोग नहीं करती थीं।

भिक्षुणियां ओढ़ने तथा बिछाने के लिए चादर, हाथ, मुँह पोंछने हेतु अंगोछा तथा जल छानने के लिए वस्त्र, छाता तथा एक झोला अपने साथ रखती थीं जिसमें उनकी आवश्यकता का सभी सामान रखा रहता था।

भिक्षुणियां आभूषण नहीं धारण करती थीं। ''कटिसुत्तक'' कमरबन्द से भिन्न प्रकार का आभूषण होता था जो मोती–मणियों आदि से लड़ियों के रूप में गूंथकर बनाया जाता था। जन साधारण द्वारा प्रायः कमर में मेखला का प्रयोग किया जाता था। इससे ज्ञात होता है कि भिक्षुणियों के लिए भी कुछ आभूषण धारण करने का विधान था।

भिक्षुणियाँ सिर, गले हाथ तथा पैरों के कुछ आभूषण धारण करती थीं। इन आभूषणों में वर्णित 'सीसूपगो' सिर पर धारण किये जाने वाला कोई आभूषण था। गले में धारण करने वाला आभूषण 'गीवापगो', हाथ में 'हत्थपगो', कटि में 'कटिपगो' तथा पैरों में 'कटपगो', सरीखे आभूषणों का विवरण उपलब्ध प्राप्त होता है।[39]

भोजन के सन्दर्भ में भिक्षुणियों का जीवन भी भिक्षाश्रित था। भिक्षाटन विधि भिक्षुओं के समान थी। जीवन–निर्वाह के लिए गलत

मार्ग अपनाना विनय के विरुद्ध था। भिक्षुणियों के लिए मुख्य रूप से चीवर, भिक्षापात्र और रहने के लिए कमरा आवश्यक था।[40]

भिक्षुणियों की सम्पत्ति प्रायः भिक्षुओं के समान थी। यदि सम्पूर्ण संघ को कोई लाभ मिलता तो भिक्षु–भिक्षुणी को बराबर भाग दिया जाता था।

बौद्ध भिक्षुणी को शस्त्र खोजकर रखना, मृत्यु की प्रशंसा करना तथा मरने के लिए किसी को प्रेरित करना सर्वथा निषिद्ध था।[41] ऐसी भिक्षुणी पाराजिक दण्ड की भागी होती थीं और संघ से सर्वदा के लिए निकाल दी जाती थी। थेरीगाथा में भिक्षुणी सिंहा का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसने आत्महत्या का प्रयत्न किया था। सात वर्ष की साधना के पश्चात् भी जब उसके चित्त को शांति नहीं मिली, तो उसने एक घने वन में फाँसी लगाकर मरने का निश्चय किया परन्तु जैसे ही वह फाँसी गले में डाल रही थी कि उसका चित्त विमुक्त हो गया। मृत्यु के समय यदि भिक्षुणी अपने दायभाग (परिक्खार) संघ को देना चाहे तो वह सामान भिक्षुणी–संघ का होता था। भिक्षु–संघ उसे नहीं ग्रहण कर सकता था। परन्तु यदि शिक्षमाणा तथा श्रामणेरी मृत्यु के समय अपना दायभाग संघ को देना चाहे तो वह सामान भिक्षु–संघ का होता था, भिक्षुणी–संघ का नहीं।[42]

संदर्भ ग्रंथ

1. मिश्र जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास – पृ. 821
2. सिंह अवधेश, चीनी यात्रियों के यात्रा विवरण में प्रतिबिम्बित बौद्ध धर्म का एक अध्ययन – पृ. 277
3. ''पण्डिता वियत्ता मेधाविनी बहुस्सुता चित्तकथा कल्याणपटिभाना'' – संयुक्त निकाय, 44/1
4. ''पण्डिता, विशाख, धम्मदिन्ना भिक्खुनी, महापञ्ञा, विसाख, धम्मदिन्ना भिक्खुनी। मं चे पि त्वं, विसाख, एतमत्यं पुच्छेय्यासि, अहं पि तं एवमेव ब्याकरेय्यं, यथा तं धम्मदिन्नाय भिक्खुनिया पाकतं। – मज्झिम निकाय, 1/44
5. थेरी गाथा, सं. 49, 53, 58, 59, 60, 61
6. वही, सं. 65
7. विनयधरानं यदिदं पटाचारा, – अंगुत्तर निकाय, 1/14
8. थेरी गाथा, गाथा, 427
9. थेरी गाथा, गाथा, 55
10. ''अमोघो अय्याय ओवादो'' – थेरी गाथा, गाथा, 126
11. वही, परमत्थदीपनी टीका, 48, 50
12. वही, गाथा, 170–71
13. पातिमोक्ख, भिक्खुनी पाचित्तिय, 103
14. वही, 82, 83
15. ''झायत्ति उपनिज्झायतीति झानं'' – समन्तपासादिका, भाग प्रथम, पृ. 145
16. थेरीगाथा, गाथा, 24 वही, 362
17. ''झायिनं यदिदं नन्दां'' – अंगुत्तर निकाय, 1/14
18. थेरीगाथा, गाथा, 46
19. 'इत्थिभावो नो किं कयिरा चित्तम्हि सुसमाहिते
20. ञाणम्हि वत्तमानम्हि सम्मा धम्मं विपस्सतो'' – वही, 61
21. वही, गाथा – 118–20, 172–74, 179–80
22. थेरीगाथा, गाथा, 44
23. वही, गाथा 156
24. वही, गाथा 38
25. वही, गाथा – 100
26. ''पुब्बेनिवासं . . . . . सासनं'' – वही, गाथा, 70–71
27. ये केचि वड्ढ सङ्खारा हीनउत्कट्ठमज्झिमा अणु पि अणुमत्तो पि वनथो मे न विज्जति –वही, गाथा– 207
28. वही, गाथा, 48
29. थेरीगाथा, परत्मथदीपनी टीका, 57
30. श्रीवास्तव, के.के., पालि जातक एवं सांस्कृतिक अध्ययन – पृ. 200
31. महावग्ग – 8, 5, 6
32. विनयपिटक (हि. अ.) पृ. 441
33. वही, पृ. 439
34. विनयपिटक (हि. अ.) पृ. 62, 540;
35. वही, पृ. 419
36. वही, पृ. 438
37. वही, पृ. 118
38. विनयपिटक (हि. अ.) पृ. 218
39. पाचित्तिय पृ. 473
40. सिंह अवधेश, चीनी यात्रियों के यात्रा विवरण में प्रतिबिम्बित बौद्ध धर्म का एक अध्ययन – पृ. 279
41. पातिमोक्ख, भिक्खुनी पाराजिक, 3
42. थेरीगाथा, परमत्थदीपनी टीका, 40